पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/09510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2024-2026 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 27, अंक 257 मार्च2025

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस

की

हार्दिक शुभकामनाएँ

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 27 अंक 257
मार्च 2025

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/09510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

Peer Review Committee
डॉ. श्रवणकुमार मेघ, जोधपुर(राजस्थान)
प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, मुंबई (महाराष्ट्र)
प्रो. रश्मि श्रीवास्तव, उज्जैन (म.प्र.)
डॉ. बी.ए.सावंत, सांगली (महाराष्ट्र)

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	3
2	अंगल-मराठा शासन के विरुद्ध बस्तर में घटित मेरिया विद्रोह का स्वरुप	ईश्वर लाला (शोधार्थी) डॉ. डिश्वरनाथ खुटे (शोध निर्देशक)	4
3	Cultural Hybridity and Assimilation : Exploring the Immigrant Experience in Jasmine	Varsha Raja Research Scholar Dr. Bhaskar Tiwari Supervisor	7
4	A Study on Employee Motivation and Its Impact on Employee Performance	- [1]Aakanksha Mishra Research Scholor - [2]Dr. Rajendra Chaudhary Supervisor (Department of Management)	11
5	Intergenerational Equity and Judicial Activism in Sustainable Business Practices	- [1]Madhav Sharan Pathak Research Scholar (Department of Law) - [2]Dr. L.P. Singh Research Guide, Professor (Department of Law)	15
6	भारतीय कला का बदलता परिवेश	डॉ. अनंता शांडिल्य एसोसिएट प्रोफेसर	19
7	आधुनिक हिंदी कहानियों में वृद्ध विमर्श	Dr. Sanjay L. Bandhiya	21
8	''सुमन'' के काव्य में निहित सामाजिक जीवन-दृष्टि	डॉ. प्रांजल कुमार नाथ	25

UGC Care Listed Journal
खाते का नाम - आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.- 63040357829
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 20/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 200/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 2,000/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 20,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

भारतीय संविधान के मूल्यों–''स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता की सामाजिक न्याय'' की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य और शिक्षा के प्रकाश में जमाने के बदलते हुए तेवरों के साथ–साथ नारी को अमानवीय माननेवाली मान्यताएं शनैः–शनैः साँसें तोड़ती जा रही है, क्योंकि चौके–चूल्हे से जुड़ी रहनेवाली नारी आज जहाँ कम्प्यूटर से खेलने लगी है, विमान उड़ाने लगी है और युद्ध में सैनिक की भूमिका निभाकर अपनी शक्ति–शौर्य को प्रकट कर रही है, वहीं उसने शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, राजनीति, खेलकूद के साथ–साथ आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में अपनी सफलता के झण्ड़े गाड़ दिये हैं। नारी को अबला कहना उसकी मानहानि करना हैं और यह पुरुष का नारी के प्रति घोर अन्याय भी है। यदि बल का अर्थ पशु–बल है तो निःसंदेह नारी पुरुष से कमजोर है क्योंकि उसमें पशुता नहीं है। लेकिन बल का अर्थ नैतिक बल है तो नारी पुरुष से अनंतगुनी ऊँची है। नारी आधी दुनिया मानी गई है। यदि वह शोषित होती रही तो हम समाज को सुखी कैसे देख सकते हैं ?

यह भी चिंतनीय है कि विगत कुछ समय से जिस तरह नारी अत्याचारों में वृद्धि हो रही है, उसे देखकर यह धारणा निराधार साबित होने लगी है कि हम विश्व गुरु बनने की देहली पर खड़े, आगे बढ़ रहे हैं। नारी पर आये दिन होने वाले विभिन्न अत्याचारों को देखकर यह कहना भी कठिन नहीं है कि हमारे पुरुष प्रधान समाज में पुरुष की मानसिकता नारी के प्रति आज भी सोलहवीं शताब्दी की ही है। पुरुष आज भी अपनी पत्नी, बेटी और बहन को व्यवहार में समानता का दर्जा नहीं दे पाता है। यह देखने में आता है कि अधिकांश भारतीय परिवारों में नारी को रोटी, कपड़ा, गहनें, सुरक्षा तो देता है पर बराबरी का दर्जा नहीं देता।

वास्तव में नारी–मुक्ति आन्दोलन के नाम पर पुरुष के आधिपत्य से या फिर पुरुष प्रधान व्यवस्था से मुक्त होने की बात करना एकतरफा बात होगी। नारी की लड़ाई दो तरफा है–उसे समान अधिकारों के लिये तो लड़ना ही है, वर्ग–विभाजन व्यवस्था के विरुद्ध लड़ना हैं जिसमें अशिक्षा, बेरोजगारी, भुखमरी, भ्रष्टाचार है और असमानता के आधार पर व्यक्ति का चाहे वह पुरुष हो या नारी शोषित किया जाता है। साथ ही साथ उन्हें इस बात के लिए नारी को स्वयं लड़ना होगा जो अधिकार आज उसे मिले हैं वे समाज ने उसे अनायास ही नहीं दिये। उनके लिये नारी ने लम्बा संघर्ष किया है। नारी को अस्मिता के लिये जागरुक करने के लिये बचपन से ही कन्याओं में चेतना जगानी व विकसित करनी होगी, वह शिक्षित होने के साथ–साथ जागरुक भी हो, पुरातन पंथी–मान्यताओं, संस्कारों, आडम्बरों को तिलांजलि देकर स्वनिर्णय की क्षमता अपने आप में विकसित करनी होगी। अपने घर–परिवार व अपने जीवन से संबंधित सकारात्मक निर्णय स्वयं लेने योग्य स्वयं को बनाना और उसे अमल में भी लाना होगा।

''कोमल है, कमजोर नहीं
शक्ति का नाम ही नारी है।''

अतः नारी स्वयं को हीन या कमजोर नहीं समझे। प्रकृति प्रदत्त गुणों ने नारी को पुरुष से ऊँचा स्थान दिया है, वह जननी है, सृष्टि की धुरी है, फिर वह हीन या तुच्छ कैसे? नारी स्वयं को सदैव पुरुष के समकक्ष रखें व पुरुष की साथी समझे। नारी स्वतंत्र तब होगी, जब वह अपनी दुनिया में जागरुक होगी, अपने प्रति होने वाले शोषण का प्रतिकार करेगी और मानसिकता बदलेगी। प्रसिद्ध कहानीकार इस्मत चुगताई ने लिखा है –

''जिंदगी सहनशीलता का इम्तहान ही नहीं, सपनों– उमंगों की ताबीर भी है।''

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने लिखा है –

''आत्मा के पतन के लिए जाति और औरत, ये दो कटघरे मुख्यतः जिम्मेदार हैं। जब तक शूद्रों, दलितों, औरतों की सोई हुई आत्मा नहीं जगती और जतन तथा मेहनत से उसे फलने–फूलने और बढ़ाने की कोशिश नहीं होगी तब तक हिन्दुस्तान में किसी तरह नई जान नहीं लाई जा सकेगी।''

भारत रत्न डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया है कि ''स्त्रियों को आत्म–निर्णय के अधिकार से वंचित कर हम राष्ट्रीय आर्थिक विकास को अवरुद्ध करते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों को जीने और अवसर की समानता की हिमायत की है। उनका मत था कि–''मैं किसी समाज की प्रगति इस आधार पर मानता हूँ कि उस समाज में नारी ने किस सीमा तक प्रगति की है।'' उन्होंने राष्ट्र की प्रगति का स्तर स्त्रियों के स्थान को उत्कृष्ट रूप में मानते हुए विकास मानदण्ड़ों के रूप में स्वीकार किया है।

अतः वर्तमान समय की मांग है कि हम अपनी बेटियों को बदलते परिवेश के अनुरूप ढ़ालें। उसे वर्तमान परिस्थितियों का डटकर सामना करके विजयी होने हेतु तैयार करें। अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस की हार्दिक बधाई।

– डॉ. तारा परमार

आंग्ल-मराठा शासन के विरूद्ध बस्तर में घटित मेरिया विद्रोह का स्वरूप

– ईश्वर लाल (शोधार्थी)
– डॉ. डिश्वरनाथ खुटे (शोध निर्देशक)

शोध सार –

छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में घटित मेरिया विद्रोह बस्तर के आदिवासियों की संस्कृति की लड़ाई थी। बस्तर की अधिष्ठात्री दंतेश्वरी देवी के मंदिर में प्रत्येक तीन वर्ष के बाद दशहरे के अवसर पर आयोजित होने वाले लोक विश्रुत मानवबलि बस्तरवासियों की सांस्कृतिक मान्यता से संबंधित थी। राजपरिवार के परस्पर मतभेद ने अंग्रेजों एवं मराठों को बस्तर की संस्कृति में सैनिक नियंत्रण स्थापित करने का अवसर प्रदान कर दिया। अपनी पारम्परिक विरासत को बचाने के लिए बस्तरवासियों ने भी हथियार उठाए और अनेक निर्दोष आदिवासी मारे गए। हथियार के दम पर वर्षों की मानवबलि की परम्परा को ब्रिटिश शासन ने बंद कर दिया और सैनिक कार्यवाही कर विद्रोह को कुचल दिया।

शब्द कुंजी – बस्तर, अधिष्ठात्री, राजपरिवार, मानवबलि, माड़िया, विद्रोह, परम्परा, कानून।

पृष्ठभूमि –

छत्तीसगढ़ के दक्षिणभाग में स्थित बस्तर में दीर्घकाल तक काकतीय राजवंश के अनेक राजाओं ने शासन किया। अटठारहवीं शताब्दी के उत्तर्राद्ध में उत्तराधिकार को लेकर अजमेर सिंह और दरियावदेव के मध्य विवाद उपजा। दरियावदेव ने जैपुर शासक के सुझाव पर नागपुर के भोंसले मराठों एवं उनके संरक्षक ब्रिटिश अधिकारियों से 6 अप्रेल 1778 को कोटपाड़ की संधि कर ली जिससे बस्तर अब रतनपुर राज्य के अधीन आ गया तथा मराठों एवं अंग्रेजों को बस्तर में प्रवेश करने का वैध माध्यम प्राप्त हो गया। तब से ब्रिटिश शासकों ने अनेक नए नियम कानूनों के द्वारा बस्तर वासियों को नियंत्रित करने का प्रयास किया।

घटना के महत्वपूर्ण कारण –

उन्नीसवीं शताब्दी की मध्यावधि में पुनः काकतीय राजपरिवार में भुपालदेव और उनके सौतेले भाई दलगंजन सिंह के बीच उत्तराधिकार का विवाद उठ खड़ा हुआ। संपत्ति और बस्तर राज का तारापुर परगना मिलने पर भी असंतुष्ट, पराक्रमी और आदिवासियों में लोकप्रिय दलगंजन सिंह ने 1842 में नागपुर के मराठा – अंग्रेज शासकों से हाथ मिला लिया। इसी वर्ष किसी अज्ञात ने बस्तर में तथाकथित मानवबलि की गुप्त सूचना नागपुर के भोंसले शासक को भेजी। मान्यतानुसार यह आदिवासियों की प्राचीन परम्परा थी जिसका उल्लेख ग्यारहवीं शताब्दी के राजपुर ताम्रपत्र में किया गया है।

मानव बलि की परम्परा –

बस्तर की अधिष्ठात्री दंतेश्वरी देवी को प्रसन्न करने के लिए हर तीन वर्ष बाद दशहरा पर्व के दिन राजपुर गांव में मानवबलि की परम्परा थी। राजपुर को इस कार्य हेतु नाग शासक मधुरांतकदेव ने दान दिया था ।

मेरिया –

बलि हेतु जिस व्यक्ति का चयन किया जाता था उसे स्थानीय भाषा में 'मेरिया' कहा जाता था। बलि के लिए आसपास के किसी गांव से एक व्यक्ति को पकड़ कर लाया जाता था अथवा कारागृह जगदलपुर से कुछ बंदियों को लाया जाता था तथा गोपनीय ढंग से मध्यरात्रि में यह रस्म पूरी की जाती थी।

सांस्कृतिक मान्यता –

यह माना जाता था कि मानवबलि से दंतेश्वरी देवी प्रसन्न होगी, उनकी कृपा से बस्तर का जनजीवन खुशहाल रहेगा और किसी भी प्रकार की विपत्ति से देवी

प्रजा की रक्षा करेगी। इस परम्परा को तोड़ने पर प्रजा को देवी के प्रकोप का सामना करना पड़ेगा ।

मानवबलि के प्रमाण –

1. मधुरकोट के राजा मधुरांतकदेव के शासनकाल (1062–69) का राजपुर ताम्रपत्र जिसमें मणिकेश्वरी देवी को दी जाने वाली मानवबलि हेतु राजपुर ग्रामदान का उल्लेख है। काकतीय शासकों द्वारा चौदहवीं शताब्दी में डंकिनी तथा शंखिनी नदी के संगम स्थल पर इस क्षेत्र की मातृदेवी मां दंतेश्वरी का मंदिर निर्मित कराया गया तथा मानवबलि की प्रथा को जारी रखा ।

2. कैप्टन जे. टी. ब्लंट एक अंग्रेज यात्री था जो कि मई 1795 में लगभग पंद्रह दिनों के बस्तर प्रवास पर था। उनके यात्रा वृत्तांत में बस्तर क्षेत्र में होने वाले मानवबलि का उल्लेख है।

3. सन 1818 में छत्तीसगढ़ के तत्कालीन ब्रिटिश अधीक्षक पी. वी. एगेन्यू ने बस्तर के राजा महिपालदेव के साथ राय्यूर गांव में भेंट की। उनके प्रशासनिक प्रतिवेदन में बस्तर में प्रचलित मानवबलि का स्पष्ट उल्लेख है ।

4. सन 1827 में रिचर्ड जेनकिंस नामक अंग्रेज ने बस्तर का भ्रमण कर अपनी रिपोर्ट में मानवबलि का उल्लेख किया तथा यह भी कहा कि इस कृत्य को बस्तर शासक का प्रत्यक्ष संरक्षण प्राप्त है।

मराठा शासन द्वारा प्रशासनिक अभियोग एवं जांच –

उपरोक्त तथ्यों को आधार बना कर भोंसला शासकों ने राजा भुपालदेव पर अभियोग लगाकर उनको सन् 1842 में ही नागपुर तलब किया। किंतु स्वाथ्यगत कारणों से राजा नागपुर नहीं जा सका तथा अपने स्पष्टीकरण में उन्होनें बस्तर राजा के संरक्षण में ऐसा कोई भी कार्य होने से इंकार कर दिया। उन्होनें आगे कहा कि यदि उनकी जानकारी के बिना ऐसी कोई घटना होती होगी तो उसे शीघ्र ही समाप्त कर दिया जाएगा। बस्तर राजा की ओर से दीवान दलगंजन सिंह को सहयोगी जगबंधु के साथ नागपुर भेजा गया। नागपुर के मराठा शासक तथा ब्रिटिश रेजीडेंट को पूछताछ के दौरान दीवान दलगंजन सिह द्वारा दिए गए बयान से यह संदेह हुआ कि दंतेश्वरी मंदिर में मानवबलि की घटना लगभग सत्य है।

ब्रिटिश हस्तक्षेप एवं सैनिक कार्यवाही –

नागपुर के ब्रिटिश रेजीडेंट की सलाह पर दंतेवाड़ा के दंतेश्वरी मंदिर में नागपुर से अरबी सैनिकों का एक दस्ता सन 1842 में ही तैनात कर दिया। रायपुर के तत्कालीन तहसीलदार को मानवबलि रोकने में सैनिक दस्ते के उपयोग हेतु निर्देश दिया गया। राजा भूपालदेव को बस्तर का नियंत्रण दलगंजन सिंह के हाथों सौपने का आदेश दिया गया किंतु दंतेश्वरी मंदिर के पुजारी श्यामसुंदर जिया की असहमति के कारण दलगंजन सिंह भी मराठा शासन का विरोधी हो गया।

ब्रिटिश शासन ने कर्नल मैकफर्सन को बस्तर एवं उड़ीसा क्षेत्र में मानवबलि की जांच हेतु नियुक्त किया। मैकफर्सन ने 1852 के अपने जांच प्रतिवेदन में माटीदेव की पूजा तथा विशेष अवसरों पर मानवबलि की घटना की पुष्टि की। मैकफर्सन रिपोर्ट के आधार पर कार्यवाही करते हुए दलगंजन सिंह के स्थान पर वामन राव को बस्तर का दीवान नियुक्त कर उक्त कृत्य को रोकने की जिम्मेदारी सौंप दी गई तथा मंदिर में सैनिकों की संख्या को और अधिक बढ़ा दिया गया।

माड़िया आदिवासियों का प्रतिरोध –

मंदिर के पुजारी श्याम सुंदर जियौ बस्तर में अधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली थे। उन्होनें मंदिर में अरब सैनिकों की नियुक्ति को मां दंतेश्वरी का अपमान तथा अपनी संस्कृति और परम्परा के खिलाफ समझा। उनका अनुमान था कि मां दंतेश्वरी की विधिवत पूजा न होने से बस्तर में देवी का प्रकोप होगा और काकतीय राज समाप्त हो जाएगा एवं प्रजा को अनेकानेक समस्याएं होंगी।

श्यामसुंदर जिया के आव्हान पर आसपास के

मुरिया लोग मंदिर में एकत्र हुए। हिड़मा मांझी के नेतृत्व में संगठित दण्डामी माड़िया लोगों ने मंदिर से सेना हटाने के लिए बगावत की। नए दीवान वामन राव के आदेश पर सेना ने बगावती माड़िया आदिवासियों पर बल प्रयोग किया। हिड़मा मांझी सैनिकों की पकड़ से बाहर थे, उनके नेतृत्व में शीघ्र ही माड़िया आदिवासियों का संगठन अधिक विशाल रूप में मजबूत हुआ और सेना के विरोध ने अब आदिवासी विद्रोह का रूप ले लिया। इस घटना की सूचना मिलने पर नागपुर के ब्रिटिश रेजीडेंट ने रायपुर से केंपबेल के नेतृत्व में अंग्रेजों की सेना को दंतेवाड़ा भेजा।

ब्रिटिश सेना तथा माड़िया आदिवासियों के बीच लंबे समय तक लडाई चलती रही। माड़िया आदिवासी अपने तीर–धनुष, बरछा, भाला, कुल्हाड़ी जैसे अपने पारम्परिक हथियारों के साथ एकजुट होकर अंग्रेजी सेना से अपनी परम्परा को बचाने के लिए लड़ते रहे। अंग्रेजी सेना ने अनेक माड़िया आदिवासियों को मौत के घाट उतार दिया, उनके अनेक गांव जला दिए गए, अनगिनत लोगों को चित्रकूट की बहती जलधारा पर फेंक दिए महिलाओं के साथ बलात्संग अपराध किए और अंततः ब्रिटिश सेना इस विद्रोह को कुचलने में सफल हो गई।

विद्रोह का स्वरूप –

अपनी सांस्कृतिक परम्परा को मराठा–अंग्रेज हस्तक्षेप से बचाने के लिए बस्तर के मुरिया आदिवासियों ने पूर्ण एकजुटता के साथ मां दंतेश्वरी के मंदिर में सैनिक गतिविधियों का विरोध किया। इस विद्रोह में उनका मार्गदर्शन मंदिर के पुजारी श्याम सुंदर जिया ने तथा नेतृत्व हिड़मा मांझी ने किया। पूरी लड़ाई में मुरिया आदिवासी केवल अपने समुदाय के लोगों के साथ इकट्ठे होकर लड़ते रहे उन्होंने किसी अन्य का सहयोग नही लिया तथा आधुनिक हथियारों से लैस अंग्रेजी सेना का सामना अपने पारम्परिक तीर–धनुष से ही किया। आर्थिक रूप से अक्षम होने तथा आधुनिक हथियारों के न होने पर भी वे अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए अंतिम सांस तक लड़ते रहे। बस्तरवासी अपने क्षेत्र में किसी बाहरी जनों की उपस्थिति को पसंद नहीं करते थे जबकि मंदिर में न केवल बाहरी हस्तक्षेप की स्थिति निर्मित हुई अपितु मंदिर की सदियों पुरानी पूजा पद्धति को बंद करने का प्रयास किया गया जो कि आदिवासी अस्मिता के खिलाफ था, आदिवासी सदियों से ऐसे हस्तक्षेप का विरोध अपनी जान पर खेल कर भी करते आ रहे थे। आदिवासियों को अपनी संस्कृति एवं परम्पराएं अधिक प्रिय हैं जिनकी सुरक्षा के लिए उन्होंने हथियार उठाए और मराठा – अंग्रेजी एकता को यह संदेश दिया कि बस्तर, बस्तरवासियों का है, और इसकी रक्षा के लिए हम प्राण देने के लिए भी तैयार हैं, यहां किसी दूसरे की मनमानी नही चलेगी।

– ईश्वर लाल (शोधार्थी)
– डॉ. डिश्वरनाथ खुटे (शोध निर्देशक)
इतिहास अध्ययनशाला,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छत्तीसगढ़)
मोबा. 8770770719

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. शुक्ल, हीरालाल, 'हिस्ट्री आफ दि प्यूपिल ऑफ बस्तर', 1992.
2. शुक्ल, हीरालाल, 'आदिवासी बस्तर का वृहद इतिहास', बी. आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन नई दिल्ली, 2005.
3. ठाकुर, केदारनाथ, 'बस्तर भूषण', (पुनर्मुद्रित अंक) नवकार प्रकाशन कांकेर 2005.
4. शुक्ल, हीरालाल, 'छत्तीसगढ़ का जनजातीय इतिहास', मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश, 2003.
5. वर्मा, भगवान सिंह, 'छत्तीसगढ़ का इतिहास', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
6. कर्नल मैकफर्सन रिपोर्ट 1852.

"CULTURAL HYBRIDITY AND ASSIMILATION : EXPLORING THE IMMIGRANT EXPERIENCE IN JASMINE"

- Varsha Raja
Research Scholar
- Dr. Bhaskar Tiwari
Supervisor

ABSTRACT

This research paper examines cultural hybridity and assimilation ascentral themes in Bharati Mukherjee's novel Jasmine, exploring the immigrant experience through the transformative journey of its protagonist. Jasmine's evolution from Jyoti, a traditional village girl in India, to her multiple identities in the United States Jasmine, Jazzy, Jase, and Jane highlights the fluid and dynamic nature of identity. The narrative captures the tension between cultural assimilation and resistance, illustrating the challenges and opportunities faced by immigrants in navigating the complexities of a new cultural landscape.

This study situates Jasmine within the broader discourse of diasporic literature, emphasizing its relevance in understanding the psychological, emotional, and social dimensions of migration. This paper contributes to the understanding of identity formation in a globalized world, where cultural negotiation and assimilation remain vital to the immigrant narrative.

KEYWORDS

Immigrant, Psychological, Negotiation, Identity, Cultural, Gender.

INTRODUCTION

In the ever-evolving landscape of global migration, diasporic literature emerges as a poignant lens through which the complexities of identity, belonging, and cultural negotiation are explored. Bharati Mukherjee's Jasmine stands as a quintessential example of this genre, offering a nuanced portrayal of the immigrant experience. Published in 1989, the novel traces the journey of Jasmine, a young Punjabi woman, as she transitions from the constraints of her traditional Indian upbringing to the challenges and opportunities of life in the United States. As Mukherjee herself notes, "The immigrant consciousness is complex; it is a process of dismantling and reassembling identities" (Mukherjee, 1993), a theme vividly realized through Jasmine's transformative journey.

This paper aims to explore the immigrant experience through Jasmine's journey, with a focus on how she negotiates her identity in the interplay of cultural hybridity and assimilation. By examining the protagonist's transformations, the study delves into the broader implications of migration on identity formation, particularly for women navigating patriarchal constraints and cultural displacement. Mukherjee's Jasmine serves as a compelling narrative that not only highlights the challenges of diasporic life but also celebrates the resilience and agencyof immigrants. In a world increasingly shaped by globalization and cross-cultural exchanges, Jasmine's story remains a vital exploration of the human capacity to adapt, redefine, and thrive. Through a detailed analysis of Jasmine's journey, the paper seeks to illuminate how cultural hybridity and assimilation shape the lives of immigrants, offering insights into the universal quest for belonging and identity in an alien land.[1]

CULTURAL HYBRIDITY IN JASMINE

Bharati Mukherjee's Jasmine is a profound exploration of cultural hybridity, aconcept that underscores the blending and negotiation of cultural identities. Jasmine's negotiation between Indian traditions and American cultural norms forms the crux of her hybrid identity. As Jyoti, she is bound by the patriarchal customs of her Punjabi village, where her role as a daughter and wife is dictated by rigid social norms. The tragic death of her husband, Prakash, marks a turning point, propelling her into a journey of self-discovery that challenges these traditional constraints. As Jasmine transitions to life in the United States, she begins to adapt to the cultural practices of her new environment, adopting a more assertive and independent persona. Her relationships with Taylor, Bud, and other character sex emplify her ability to navigate between cultural expectations, blending Indian Mukherjee's portrayal of Jasmine challenges conventional notions of fixed identities, celebrating the transformative potential of hybridity as a site of resilience, adaptation, and self-discovery.[2]

Intersection of Gender and Culture

The intersection of gender and culture in Bharati Mukherjee's Jasmine highlights the gendered experiences of migration and cultural hybridity, presenting the unique challenges faced

by women navigating displacement and self-reinvention. As a female immigrant, Jasmine's journey is deeply shaped by the patriarchal constraints of her Indian upbringing and the evolving opportunities available in the United States. Her transformation through multiple identities Jyoti, Jasmine, Jazzy, Jase, and Jane illustrates how migration not only disrupts cultural norms but also provides a space for reimagining gender roles and asserting agency.

Jasmine's experiences of migration are distinctly gendered, reflecting the compounded struggles of cultural displacement and patriarchal oppression. In conclusion, Jasmine illustrates the intricate intersection of gender and culture in shaping the immigrant experience. Mukherjee's portrayal of Jasmine highlights the unique struggles and opportunities faced by women navigating migration and cultural hybridity.

Challenges and Opportunities of Hybridity

Bharati Mukherjee's Jasmine poignantly captures the challenges and opportunities of cultural hybridity, shedding light on the emotional and psychological toll of living between two cultures, while also emphasizing the potential for self-growth and agency that hybridity offers. The protagonist's journey exemplifies the struggles of negotiating multiple cultural identities and the transformative possibilities that arise from these negotiations.[3]

Emotional and Psychological Toll

The duality of cultural hybridity often results in a profound emotional and psychological toll, as individuals grapple with feelings of displacement, alienation, and identity fragmentation. For Jasmine, the transition from her traditional Indian upbringing in Hasnapur to the dynamic and unfamiliar landscapes of the United States is fraught with inner conflict. Mukherjee portrays this as a recurring struggle in Jasmine's life, where her attempts to assimilate into American society are accompanied by nostalgia for her homeland and moments of cultural dissonance (Mukherjee, 1989).

Opportunities for Self-Growth and Agency

Despite the emotional challenges, hybridity also provides Jasmine with unique opportunities for self-growth and the assertion of agency. Her ability to navigate and adapt to diverse cultural contexts enables her to redefine herself on her own terms.

Jasmine's journey also underscores the transformative potential of hybridity as a space for resilience and creativity. Her ability to adapt and thrive in different cultural settings exemplifies the flexibility and resourcefulness that hybridity demands. This adaptability not only enables Jasmine to survive but also to grow, turning her hybridity into a powerful tool for self-realization.[4]

Conclusion

The study highlights that assimilation in Jasmine is not a linear process but a nuanced negotiation of cultural norms and personal values. While Jasmine adopts aspects of American culture to survive and thrive, she retains elements of her Indian heritage, creating a hybrid identity that transcends rigid cultural binaries.

Mukherjee's work extends beyond the individual narrative, offering broader implications for understanding diasporic identity in a globalized world. In conclusion, Jasmine serves as both a reflection of and a commentary on the immigrant experience, offering timeless insights into cultural hybridity, assimilation, and identity formation

Mukherjee's contribution lies in her ability to weave a narrative that is both deeply personal and universally resonant, making Jasmine a cornerstone for understanding the challenges and opportunities of diasporic life in an increasingly interconnected world.

- Varsha Raja
Research Scholar

- Dr. Bhaskar Tiwari
Supervisor
Department of English
Shri Krishna University,
Chhatarpur (M.P.)

References :

1. Mukherjee, B. (1989). Jasmine. Grove Press.
2. Bose, B. (1993). A question of identity : Where gender, race and America meet in Bharati Mukherjee. International Journal of Canadian Studies, 7, 39–46.
3. Gordon, M. M. (1964). Assimilation in American life : The role of race, religion and national origins. Oxford University Press.
4. Grewal, G. (1993). Bornagain American: The immigrant consciousness in Jasmine.
5. Novel : A Forumon Fiction, 26(3), 267–279. https://doi.org/10.2307/1345846 Said, E.W. (1978). Orientalism.

A Study on Employee Motivation and Its Impact on Employee Performance

- [1]**Aakanksha Mishra**
Research Scholor
- [2]**Dr. Rajendra Chaudhary**
Supervisor
(Department of Management)

ABSTRACT

Employee motivation is a critical factor that significantly influences organizational performance and productivity. This research paper explores the relationship between employee motivation and its impact on employee performance, drawing from a comprehensive review of academic literature, case studies, and regulatory frameworks within the Indian context. The study examines various intrinsic and extrinsic motivational factors, including financial incentives, recognition, work-life balance, and opportunities for professional development. Case studies of major Indian companies like Tata Consultancy Services, Infosys, and HCL Technologies provide practical insights into how motivation strategies can be implemented to enhance employee performance. Additionally, the paper analyzes relevant labor laws such as the Minimum Wages Act, the Payment of Bonus Act, and the Factories Act, which govern employee welfare and contribute to motivational efforts.

KEYWORDS

Employee Motivation, Employee Performance, Labor Laws, TCS, Infosys, HCL.

INTRODUCTION

Employee motivation is a critical component of organizational success. A highly motivated workforce tends to be more productive, committed, and engaged, which directly influences the overall performance of an organization. On the other hand, a demotivated workforce can lead to decreased productivity, high turnover rates, and a negative workplace culture. Understanding the various factors that drive employee motivation and how they impact employee performance has long been a subject of interest for scholars, human resource professionals, and business leaders.

Motivation, at its core, refers to the internal and external forces that influence an individual's behavior. For employees, motivation can stem from various factors, including financial incentives, workplace environment, career advance-

ment opportunities and intrinsic rewards such as personal growth and job satisfaction. The relationship between motivation and performance is not always straightforward, as individuals are motivated by different factors and to varying degrees.

Methodology

The data collection process involved an extensive review of peer-reviewed journal articles, books, government reports, and organizational studies on employee motivation. Additionally, case studies from various industries were analyzed to understand how organizations implement motivation strategies and how these strategies affect employee performance. The regulatory frameworks evaluated include labor laws and workplace policies that influence employee rights and motivation, particularly in terms of compensation, working conditions, and employee engagement.

Theories of Employee Motivation

Maslow's Hierarchy of Needs

Abraham Maslow's theory is one of the most widely recognized models of human motivation. In the workplace context, Maslow's theory suggests that employees are motivated by fulfilling a hierarchy of needs, starting from basic physiological needs and progressing to higher-level psychological needs. The five levels in Maslow's hierarchy are :

1. Physiological Needs : Basic necessities such as food, water, and shelter, which in the workplace can be translated to a fair salary that meets the employee's living needs.

2. Safety Needs : A secure working environment, which includes job security, health benefits, and a safe physical workplace.

3. Social Needs : Relationships with colleagues, team bonding, and a sense of belonging within the organization.

4. Esteem Needs : Recognition, respect from others, and opportunities for advancement.

5. Self-Actualization : The ability for employees to reach their full potential through personal and professional growth.

Herzberg's Two-Factor Theory

Frederick Herzberg's Two-Factor Theory differentiates between hygiene factors and motivators. Hygiene factors, such as salary, company policies, and working conditions, are necessary to prevent dissatisfaction but do not necessarily lead to motivation. On the other hand, motivators, such as recognition, responsibility, and opportunities for growth, directly contribute to job satisfaction and motivation.

Self-Determination Theory (SDT)

Deci and Ryan's Self-Determination

Theory (SDT) focuses on the role of autonomy, competence and relatedness in fostering intrinsic motivation. According to SDT, employees are more motivated when they feel they have control over their work (autonomy), believe they are skilled and capable (competence), and experience meaningful relationships with their colleagues (relatedness).

Expectancy Theory

Vroom's Expectancy Theory (1964) emphasizes the relationship between effort, performance, and outcomes. According to this theory, employees are motivated to perform well when they believe that their efforts will lead to desirable outcomes. The theory is based on three key components:

1. Expectancy : The belief that increased effort will lead to improved performance.

2. Instrumentality : The belief that good performance will be rewarded.

3. Valence : The value placed on the reward or outcome.

Factors Influencing Employee Motivation

Financial Incentives

One of the most obvious motivators for employees is financial compensation. Salary, bonuses, and other financial rewards play a critical role in employee motivation, especially in the context of meeting basic physiological and safety needs as outlined in Maslow's hierarchy. Many organizations implement performance-based pay systems, where employees receive financial rewards based on their performance, as a way to motivate employees.

Job Satisfaction

Job satisfaction is closely linked to motivation. When employees are satisfied with their roles, they are more likely to be motivated to perform well. Job satisfaction can be influenced by various factors, including the nature of the work, relationships with colleagues and opportunities for advancement. 2015 study by Gallup found that employees who are engaged and satisfied with their work are 17% more productive and have 41% lower absenteeism rates than disengaged employees.

Work-Life Balance

Achieving a healthy work-life balance is increasingly recognized as a key factor in employee motivation. Employees who feel overwhelmed by work or experience burnout are less likely to be motivated and productive. On the other hand, organizations that prioritize work-life balance through flexible work arrangements, paid time off, and mental health support often see higher levels of motivation and employee well-being.

Impact of Employee Motivation on Performance

1. Increased Productivity.

2. Improved Quality of Work.

3. Enhanced Employee Retention.

4. Better Employee Morale and Team Collaboration.

5. Increased Innovation and Creativity.

CONCLUSION

Employee motivation is a critical driver of performance in any organization. Motivated employees are more productive, innovative, and committed to their work, leading to improved organizational outcomes. By understanding the factors that influence motivation such as financial incentives, recognition, work-life balance, and opportunities for professional development organizations can create environments that foster sustained motivation. In conclusion, organizations that prioritize employee motivation will likely experience better performance, lower turnover rates, and higher levels of innovation.

- [1]Aakanksha Mishra
Research Scholor
- [2]Dr. Rajendra Chaudhary
Supervisor
(Department of Management)
Shri Krishna University,
Chhatarpur (MP)

BIBLIOGRAPHY

1. Maslow, A. H. (1943). A Theory of Human Motivation. Psychological Review, 50(4), 370-396.

2. Herzberg, F., Mausner, B., & Snyderman, B. B. (1959). The Motivation to Work. Wiley.

3. Government of India. The Minimum Wages Act, 1948. Ministry of Labour and Employment.

4. Government of India. The Payment of Bonus Act, 1965. Ministry of Labour and Employment.

5. Google. Employee Motivation Strategies and Workplace Policies. Google Careers Blog.

मासिक पत्रिका "आश्वस्त" के स्वामित्व एवं अन्य विवरण
फार्म –4 (नियम 8 देखिए)

1.	प्रकाशन स्थल	:	'आश्वस्त' 20, बागपुरा, सांवेर रोड उज्जैन (म.प्र.)
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक	:	पिंकी सत्यप्रेमी
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	'आश्वस्त' 20, बागपुरा, सांवेर रोड उज्जैन (म.प्र.)
4.	प्रकाशक	:	पिंकी सत्यप्रेमी
	पता	:	उपरोक्तानुसार
5.	संपादक	:	डॉ. तारा परमार
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	9–बी, इन्द्रपुरी, सेठीनगर, उज्जैन
6.	पत्रिका का स्वामित्व	:	भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश "आश्वस्त" 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन

उस व्यक्ति संस्था के नाम जो समाचार–पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूंजी के 1 प्रतिशत के साझेदार या हिस्सेदार हो ।

मैं पिंकी सत्यप्रेमी एतद् द्वारा घोषित करती हूं कि उपरोक्त समस्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

हस्ताक्षर
पिंकी सत्यप्रेमी
प्रकाशक

मार्च 2025

Intergenerational Equity and Judicial Activism in Sustainable Business Practices

- [1]Madhav Sharan Pathak
Research Scholar (Department of Law)
- [2]Dr. L.P. Singh
Research Guide, Professor
(Department of Law)

ABSTRACT

Intergenerational equity is a foundational principle in sustainable development, emphasizing fairness in the use of resources across generations. Judicial activism plays a pivotal role in promoting sustainable business practices by interpreting and enforcing legal principles that safeguard environmental and social interests for future generations. This research examines the interplay between intergenerational equity and judicial activism, focusing on how courts have influenced sustainable business practices in various jurisdictions. Employing a qualitative methodology, this study synthesizes existing literature, analyzes case studies and evaluates regulatory frameworks to explore the impact of judicial decisions on sustainability.

KEYWORDS

Intergenerational equity, judicial activism, environmental law, corporate social responsibility, sustainability, legal frameworks, global justice, resource allocation, future generations.

INTRODUCTION

The concept of intergenerational equity emerged as a cornerstone of sustainable development during the late 20th century, notably with the Brundtland Report of 1987, which defined sustainable development as meeting "the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs." This principle emphasizes the equitable allocation of resources and responsibilities across generations to ensure long-term ecological balance and social well-being.[1]

In recent years, the role of judicial activism in upholding intergenerational equity has gained prominence. Courts worldwide have increasingly intervened in matters of environmental degradation and corporate malfeasance, recognizing the judiciary's critical role in safeguarding the rights of future generations. Notable cases such as the Dutch Urgenda Climate Case and the Philippine Oposa v. Factoran case highlight the judiciary's capacity to hold governments and

corporations accountable for unsustainable practices.[2]

RESEARCH OBJECTIVES

1. To examine the concept of intergenerational equity and its relevance to sustainable business practices.

2. To analyze the role of judicial activism in promoting sustainability and holding businesses accountable.

3. To evaluate key judicial decisions from various jurisdictions that have influenced sustainable business practices.

4. To identify challenges and opportunities in integrating intergenerational equity into legal and regulatory frameworks.

5. To propose recommendations for strengthening the role of judicial activism in fostering intergenerational equity and sustainable business practices.

Intergenerational Equity

The concept of intergenerational equity was popularized by Edith Brown Weiss in her seminal work, In Fairness to Future Generations (1989). Weiss argues that current generations have both rights and responsibilities toward future generations, emphasizing the equitable use of natural resources and the preservation of environmental integrity.[3] Critiques of intergenerational equity often focus on its practical enforceability. Beckerman and Pasek (2001) question whether it is feasible to legislate obligations toward future generations, given the uncertainties in predicting their needs and circumstances.[4]

Judicial Activism and Environmental Law

Judicial activism refers to the proactive role of courts in interpreting and enforcing laws to address societal challenges. In the context of environmental law, judicial activism has been instrumental in advancing sustainability goals. Preston (2006) underscores the judiciary's role in bridging legislative gaps, particularly in jurisdictions where environmental regulations are under developed or poorly enforced.[5]

However, the literature also identifies challenges associated with judicial activism. Lavanya Rajamani (2010) cautions against over-reliance on courts for policymaking, arguing that judicial interventions should complement rather than substitute legislative and executive action.[6]

Sustainable Business Practices

Sustainable business practices involve integrating environmental, social, and governance (ESG) considerations into corporate strategies and operations. Carroll and Shabana (2010) discuss the evolution of corporate social responsibility (CSR) as a voluntary initiative, while Günther, Endrikat, and

Guenther (2016) emphasize the role of regulatory frameworks in mandating sustainability.

The relationship between judicial activism and corporate accountability is a growing area of interest. H{"o}hne, Luderer, and Ward (2011) highlight how judicial decisions have influenced corporate behavior, particularly in industries with significant environmental impacts. Case studies such as the Exxon Valdez oil spill and the Bhopal gas tragedy illustrate the judiciary's role in ensuring corporate compliance with environmental standards'.[7]

Despite these advancements, scholars note persistent gaps in corporate governance. Bansal and Des Jardine (2014) argue that short-term financial pressures often undermine long- term sustainability goals. This tension underscores the need for judicial activism to reinforce corporate accountability and align business practices with intergenerational equity principles.[8]

Integration of Intergenerational Equity into Legal Frameworks

The integration of intergenerational equity into legal and regulatory frameworks has been uneven across jurisdictions. Bosselmann (2015) examines the constitutional recognition of environmental rights in countries like Ecuador and Bolivia, contrasting it with the more incremental approach in common-law systems.[9] Similarly, Kotzé and du Plessis (2007) analyze South Africa's environmental jurisprudence, highlighting the judiciary's proactive stance in interpreting constitutional provisions to uphold sustainability.[10]

Internationally, the Paris Agreement (2015) and the United Nations' Sustainable Development Goals (SDGs) provide a framework for incorporating intergenerational equity into global governance.[11]

However, the enforcement of these principles remains a challenge, particularly in the absence of binding mechanisms. Biermann and Kalfagianni (2020) advocate for stronger international institutions to address these enforcement gaps[12].

CONCLUSION

Intergenerational equity and judicial activism are integral to achieving sustainable business practices. The judiciary's proactive role in interpreting and enforcing environmental laws has set important precedents for integrating sustainability into legal and corporate frameworks. However, significant challenges remain in ensuring the effective implementation of judicial decisions and addressing disparities across jurisdictions.

To strengthen the role of judicial activism in promoting intergenerational equity, the following recommendations are proposed:

1. Establishing standardized legal frameworks that prioritize intergenerational equity.

2. Enhancing judicial capacity through training and resources.

3. Promoting international cooperation to address cross-border sustainability challenges.

4. Encouraging corporate transparency and accountability through legal and regulatory measures.

By embracing these strategies, society can ensure that judicial activism continues to drive sustainable business practices that respect the rights of future generations. The interplay between intergenerational equity and judicial activism represents a critical avenue for advancing global sustainability goals while fostering social and environmental justice.

- [1]Madhav Sharan Pathak
Research Scholar (Department of Law)
- [2]Dr. L.P. Singh
Research Guide, Professor
(Department of Law)
Shri Krishna University,
Chhatarpur (M.P.)

WORKS CITED

1. Boyd, David R. The Environmental Rights Revolution : A Global Study of Constitutions, Human Rights, and the Environment. UBC Press, 2012.

2. Brundtland, Gro Harlem, ed. Our Common Future. Oxford University Press, 1987.

3. Cullet, Philippe. "Intergenerational Equity in International Law." Indian Journal of International Law, vol. 47, no. 3, 2007, pp. 621-630.

4. Davis, Rachel. "Human Rights and Business: A Policy-Oriented Perspective on Judicial Activism." Business and Human Rights Journal, vol. 5, no. 2, 2020, pp. 213–227.

5. Dutch Supreme Court. Urgenda Foundation v. The State of the Netherlands (Ministry of Infrastructure and the Environment). ECLI:NL:HR:2019:2007, 2019.

6. Global Reporting Initiative. Sustainability Disclosure Guidelines. GRI Standards, 2023.

7. Gonzalez, Carmen G. "Environmental Justice and International Environmental Law." Transnational Environmental Law, vol. 1, no. 1, 2012, pp. 79-98.

8. Indian Supreme Court. Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India, 1996 AIR 2715, 1996.

9. M.C. Mehta. M.C. Mehta v. Union of India & Ors., AIR 1987 SC 965, 1987.

10. Philippine Supreme Court. Oposa v. Factoran, 224 SCRA 792, 1993.

11. Sands, Philippe, et al. Principles of International Environmental Law. 4th ed., Cambridge University Press, 2018.

12. Sepúlveda, Magdalena. Sustainability and Human Rights: Intergenerational Equity in Practice. Amnesty International, 2019.

भारतीय कला का बदलता परिवेश

– **डॉ. अनंता शांडिल्य** एसोसिएट प्रोफेसर,

आधुनिक चित्रकला में अभिव्यक्ति अथवा अभिव्यंजना शब्द को सर्वाधिक महत्व मिला है। इसका सीधा अर्थ है अंतर्मन भी भावनाओं का बाह्य प्रकाशन! मगर इस प्रकाशन में सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि हम उस बाह्य संसार को छोड़कर, जिसके सामने हम अपनी कुंठा को प्रस्तुत करते हैं। अपनी आंतरिक भावनाओं का ही आदर करते हैं, अथवा हम समाज की रीति–नीति और परंपराओं का विशेष आदर करते हैं, और उन्हीं के अनुरूप अपनी अभिव्यक्ति को भी ढाल लेते हैं।

पहली बात को ध्यान में रखकर और उसे ही महत्व प्रदान करके कलाकारों का एक पूरा वर्ग सामने आया। और जिस विचारधारा को अब उसने अपनाया उसे अभिव्यंजनवाद के नाम से अभिहित किया है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय चित्रकला में परंपरा के शास्त्रीय एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों पर सम्यक् विचार किया है। चाहें नई प्रयोगधर्मिता हो या शास्त्रीय दोनों पक्षों को कलाकारों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति के माध्मय से समाज के सामने लाया है। इसके अनंतर चित्रकला की प्रविधियों पर विचार किया गया है। भारतीय चित्रकला की परंपराओं उसकी तकनीकों और उसके वास्तविक ध्येयों को उचित रूप से ग्रहण कर सकते हैं। अथवा उसमें प्रविष्ट होकर उसके जीवंत तत्वों को ग्रहण कर उन्हें आधुनिक रूपों में ढाल सकते हैं। अथवा उसमें प्रविष्ट होकर उसके जीवन तत्वों को ग्रहण कर उन्हें आधुनिक रूपों में ढाल सकने की चेष्टा कर सकते हैं। वर्तमान में चित्रकला की प्रविधियों का यह अनुशीलन अत्यंत गंभीर विचारोत्तर प्रश्न है।

मूल विषय पर गहन चर्चा और विश्लेषण :

1910 के दशक में कलाकार चित्रकला या मूर्तिकला की परंपरागत अभिव्यक्ति से भिन्न कुछ अलग करना चाहते थे। इसी संदर्भ में रूसी, जर्मन और डच कलाकारों ने फाइन आर्ट और क्राफ्ट को शिल्प वास्तुकला और अलंकरण के साथ एकीकृत कर शुद्ध ज्यामितीय रूपों में अपनी कलाभिव्यक्ति की और यही संस्थापन कला के रूप में उभरने लगी। इस शैली में फ्रांसीसी, अमेरिकी कलाकार मार्शल डशेम्प, जर्मन कलाकार, कर्ट श्वीटर ने अनेक कलाकात्मक कृतियों का निर्माण किया है जिसमें उन्होंने चित्र अंतराल में आकर्षक वातावरण की सृष्टि की है, जिसमें '1200 बैग ऑफ कोल' 1938 जिसमें उन्होंने कोयले की 1200 थैलियों को फर्श पर संयोजित किया एवं एक महत्वपूर्ण शिल्प कार्य में एक कमरे में सेट और माइल के लचीले तारों के जाल से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया। दोनों की कृतियाँ न्यूयार्क की कला दीर्घाओं में दशकों के अनुभवों में परिवर्तन हेतु प्रदर्शित की गई। जर्मन के कलाकार श्वीटर ने अपने घर में पाये जाने वाली अनुपयोगी सामग्रियों द्वारा कलाकृति "झूठा" टुकड़ा का निर्माण किया। एक अन्य अग्रणी अमरीकी कलाकार लुइस नेवेल्शन और लुईस बर्गोइस ने 1950 में एक वृहद् कलाकृति का निर्माण किया जिसमें लकड़ी के विभिन्न रूपों को प्रयोग किया गया । इस कृति में उन्होंने स्वतंत्र वस्तु के स्थान पर वातावरण की सृष्टि को प्रमुखता दी । पश्चिमी संस्थापन कला को गुटई समूह द्वारा जापान में 1954 में शुरू किया गया जो एलन काप्रो जैसे अमेरिकी संस्थापन कलाकारों द्वारा प्रभावी मंच में शामिल किया गया।

आजादी के 75 वर्षों बाद आज समकालीन भारतीय कला की दशा–दिशा के नये आयाम सामने आये हैं। प्रयोगधर्मी कला (इंस्टालेशन आर्ट) और ग्राफिक कला (जिसे छापाकला या प्रिंटमेकिंग के नाम से अधिक पहचाना जाने लगा है)। इस क्षेत्र में बहुत अधिक काम हो रहा है। प्रिंट मेंकर अपनी कला के एक से अधिक प्रिंट बनाता है। सिल्क स्क्रीन में तो सैंकड़ों प्रिंट प्रिंटमेकिंग में आज दिल्ली, चेन्नई, बड़ोदरा शांति निकेतन, भारत भवन, भोपाल, खेरागढ़ (छत्तीसगढ़) में

कलाकार अधिक दिलचस्प उत्तेजक और प्रयोगधर्मी काम कर रहे हैं। दक्षिण में, लक्ष्मा गौड़, दिल्ली में अनुपन सूद, खेरागढ़, प्रो. वी. नागदास, डाकोजी देवराज, कविता नायक, राजेन्द्र कुठारी, दत्तात्रय आप्टे, जयंत गजेरा, सुशांत गुहा, रिनी धूमाल, कंचन चंदर, आनंदमय बनर्जी महत्वपूर्ण प्रिंटमेकर अपना नाम बना चुके हैं। आधुनिक रचनात्मक प्रिंटमेकिंग का वास्तविक इतिहास, जो कलकत्ता से शुरू होता है।

अब बात उठती है संस्थापन कला में भारतीय कलाकार पश्चिमी दुनिया की तुलना में सार्थक बयान के साथ काम कर रहे हैं। संस्थापन कला में विवान सुंदरम, नलिनी मालिनी, गोगी सरोज पाल, मृणालिनी मुखर्जी, माधवी पारेख, नीलिमा शेख, अपर्णा कौर ने भारतीय समकालीन कला में एक नया भूचाल लाया था। अपनी सोच के साथ सांप्रदायिकता के साथ सामाजिक पहलू के विषयों पर काम किया है। उनके कामों में रचनात्मक कलाकर्म के रूप में देखा जाता है।

स्वतंत्रता के बाद समकालीन भारतीय मूर्ति शिल्पियों ने अपनी एक अलग पहचान बनायी, चित्रकारों की तुलना में कहीं अधिक संघर्ष करना पड़ा मूर्ति शिल्प की महान भारतीय परंपरा से आधुनिक भारतीय मूर्ति शिल्पियों का बहुत कम संवाद था। स्वतंत्रता के बाद भारतीय मूर्ति शिल्पियों के सामने आधुनिक होने के मॉडल या आदर्श भी बहुत कम थे। समकालीन भारतीय मूर्ति शिल्पियों के सामने महत्वपूर्ण रचनात्मक चुनौती भी थी, इसमें बड़ोदरा के नागजी पटेल, तिरुवनंतपुरम के कनाई कुन्हीरामन द्वारा रचनात्मक की महत्ता से कला संस्कृति को लोगों के सामने लाने का प्रयास किया। इस श्रृंखला में सोमनाथ खेर, शेख चौधरी, धनराज मगत, सबरीय राय चौधरी, बाकरे, बलवीर कह, हिम्मत शाह, ध्रुव मिस्त्री, एन.एन. रिमजन, एन. पुष्पमाला, लतिका कट्टा, रविंदर रेड्डी, राबीन डेवीड, वेद नायर, मदनलाल, रिक्कू, राजेन्द्र कुमार, जैसे समकालीन भित्ति शिल्पियों ने भारतीय मूर्ति शिल्प का भविष्य बेहतर किया है।

वीडियो आर्ट और उसके नये पहलू भारतीय समकालीन कला में सत्तर के दशक में आया जब ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा आयोजित है। द्विवार्षिकी अंतरराष्ट्रीय कला प्रदर्शिनी में एक पुराने महल में पीटर ग्रीनवे नेवीठियो फिल्मों और अन्य उपलब्ध सामग्री की मदद से एक अद्‌भुत इंस्टालेशन लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया, उसके बाद भारतीय समकालीन चित्रकला में वीडियो कैमरे की मदद से प्रभावशाली फिल्में बनाई गईं।

— जगदीश स्वामीनाथन

निष्कर्ष :

मेरे शोधपत्र में भारतीय समकालीन कला के पिछले 75 वर्षों का लेखा–जोखा संक्षिप्त रूप में लाने का एक प्रयास

रहा है। मेरे विचार में अपनी परंपरा से भली प्रकार एकाकार होने के बावजूद उसे अपनी रुचियों और क्षमताओं के अनुरूप बदल देते हैं। और इस प्रक्रिया में खुद अपने को सीमित कर लेते हैं। विशेषकर वे भारतीय कला के अनुभव के सिद्धांत और सौंदर्य शास्त्र की व्याख्या गीतात्मक मृदुला के साथ करते हैं। वह चीजों को युक्तिसंगत बताकर अपनी अद्वितीय संवेदनशीलता को संकुचित करते हैं। चाहे प्रयोगधर्मी और नये–नये माध्यम कला की दशा–दिशा के लिए अद्‌भुत क्षमता और ज्ञानातीय स्वयं अपने ही विलक्षण और विदग्धकर देने वाले चमत्कार घटित करता है । और संवेदनशील मन, बराबर सभी जगह इनमें संवेदित और झंकृत होते हैं। यह मेरे शोधपत्र की नई दृष्टि को प्रदर्शित करता है।

– **डॉ. अनंता शांडिल्य एसोसिएट** प्रोफेसर,
चित्रकला विभाग,
जे. जे. टी. यूनिवर्सिटी झुंझुनू विश्वविद्यालय,
राजस्थान Mob : 7037236587

संदर्भ :

1. कुणिका–केमोल्ड कला केंद्र, नई दिल्ली, मार्च 1966 के सूचीपत्र से।
2. एम. हिरयण्णा, आर्ट एक्सपीरियंस, काव्यालय पब्लिकेशसं, मैसूर, 1954, पृ.46
3. कुणिका–केमोल्ड कला केंद्र, नई दिल्ली, मार्च 1969 के सूचीपत्र से।
4. ललित कला कंटेम्परेरी–16, ललित कला अकादेमी, पृ. 15
5. पाउल क्ले द थिंकिंग आई (जर्ग स्पाइलर द्वारा संपादित पाउल क्ले की नोटबुक) लुड हम्फ्रीज, विटेनबोर्न, लंदन–न्यूयॉर्क, 1961, पृ.59
6. वही, पृ. 94
7. द पेंटर पोयट्स रू आर्पधश्विल्जर्स ध क्ले, पेंगुइन बुक्स, हार्मोन्डसवर्थ, 1974, पृ.33
8. 'द क्यूब ऐंड दी रेक्टेंगल, लिंक, 15 अगस्त, 1969
9. एन एप्रोच टू इंडियन आर्ट, प्रकाशन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, 1974, पृ.180
10. द डांस ऑफ शिवा, नूनडे प्रेस, न्यूयॉर्क, 1957, पृ.37
11. श्रीनवन्तु, अप्रैल, 1975, पृ.80
12. एंशेंट पॉटरी रिव्का गोनिन, कैसल ऐंड कंपनी लि. लंदन, 1973, पृ. 9

आधुनिक हिंदी कहानियों में वृद्ध विमर्श

- Dr. Sanjay L. Bandhiya

आधुनिक हिंदी कहानियों में वृद्ध विमर्श को एक यक्ष प्रश्न के रूप में उठाया गया है। जिस प्रकार स्त्री विमर्श, बाल विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श को साहित्य में एक विशिष्ट रूप में उभारा गया है, उसी प्रकार वृद्ध विमर्श को भी वर्तमान साहित्य में एक जटिल समस्या के रूप में चित्रित किया गया है। शहरीकरण के इस बदलते दौर में वृद्ध की स्थिति बडी ही विचारणीय है। रोजगार अवसर हेतु गांव का युवामानस शहर की ओर चल पड़ा है। शहर में आवास, अर्थाभाव जैसी समस्याओं के कारण वृद्ध अकेले गांव में रहने के लिए विवश है। आज युवा मानस पूरी तरह बदल चुका है। इसकी वजह से दो पीढियों के बीच अंतराल काफी बढ गया है। वर्तमान युवा मानस पुरानी विचारधारा का निर्वहन करने में सक्षम नहीं है। वर्तमान समाज में नई पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी के बीच वैचारिक युद्ध चल रहा है। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की विचारधारा, रहन–सहन, रीति–रिवाज, आदर्श एवं नैतिक मूल्यों को स्वीकार नहीं कर पा रही है। बस, यहीं से ही टकराव के बीज बो दिए जाते हैं। हिंदी की कई कहानियों में हम वृद्ध–विमर्श को बड़े ही सटीक एवं यथार्थ रूप में देख सकते हैं। जिनमें–प्रेमचंद रचित 'बूढ़ी काकी', भीष्म साहनी रचित 'चीफ की दावत', 'खून का रिश्ता', 'चाचा मंगलसेन', मनु भंडारी रचित 'अकेली', उषा प्रियंवदा लिखित 'वापसी' ज्ञानरंजन रचित 'पिता' जैसी महत्वपूर्ण कहानियां सम्मिलित है। साथ–साथ वर्तमान समय में वृद्धों की स्थिति पर लिखनेवाली महिला लेखिकाओं में सुधा अरोड़ा का नाम बडे आदर व सम्मान के साथ लिया जाता है। उनके द्वारा रचित कहानियाँ 'दहलीज पर संवाद' तथा 'उघडा हुआ स्वेटर' में वृद्धों की स्थिति का बड़ा ही सोचनीय वर्णन किया गया है। इन कहानियों में समय तथा परिस्थितियों के कारण संबंधों में आए बदलाव तथा परिवर्तन को हम भलि–भाँति देख

सकते है। आज हमारे कई समाज में वृद्धों की स्थिति 'न घर का न घाट का' जैसी हो चुकी है। एक ही घर में संयुक्त परिवार में रहते बुजुर्गों के लिए आज घर में कोई स्थान नहीं है। घर उनके लिए केवल एक वस्तु बनकर रह गया है। परिवार के सदस्यों द्वारा बुजुर्गों का अपमान, तिरस्कार तथा उससे उत्पन्न पीड़ा का अनुभव वृद्धों को जीने के लिए दूभर कर देता है। जब तक वृद्ध कमाते हैं तब तक उसका घर में स्थान है, जिस दिन अवकाश ग्रहण किया उस दिन से उनके प्रति देखने का दृष्टिकोण ही बदल जाता है।

की वर्ड्स – वृद्ध विमर्श, नैतिक मूल्य, संबंध, अकेलापन, संवेदना, विवशता, स्वार्थ–लोलुपता

मूल शोध लेख –

साहित्य समाज का दर्पण या प्रतिबिंब है। कथाकार समाज या अपने आसपास जो देखता है, उसे ही अपनी रचना का मूलाधार बनाता है। साहित्य में आदिकाल से ही वृद्ध विमर्श को स्थान दिया गया है। सर्वप्रथम रामायण में देख सकते हैं कि राम अपने वृद्ध पिताजी के कहने मात्र से वन में चले गए थे। प्राचीन काल में वृद्धों को सम्मान दिया जाता था। लेकिन आज परिस्थितियां पूरी तरह से परिवर्तित हो चुकी है। आज का मनुष्य स्वार्थी तथा तकलोलुप बन गया है। घर में आपका मूल्य तभी तक है, जब तक आप कमाते हैं। उषा प्रियवंदा रचित 'वापसी' कहानी के गजाधर बाबू इस स्थिति के जीते जागते उदाहरण है। गजाधर बाबू 35 साल नौकरी करके अवकाश प्राप्त कर घर आते हैं। गजाधर बाबू के घर आते ही घर का पूरा वातावरण बदल जाता है। जिस परिवार के लिए गजाधर बाबू ने अपना पूरा जीवन रेलवे क्वार्टर में अकेले रहकर व्यतीत किया, वही घर के सदस्य आज गजाधर बाबू का तिरस्कार व अपमान करने लगते हैं। वैसे तो गजाधर बाबू घर के मुखिया हैं लेकिन उनकी बातों को घर के सदस्य नजर अंदाज करते हैं। इतना ही नहीं उनकी जीवन–संगीनी पत्नी भी गजाधर बाबू को समझ नहीं पाती, इस बात से गजाधर बाबू को बहुत बड़ा सदमा लगता है। सेवा–निवृत होने के कुछ दिन बीतते ही उन्हें अपना घर बोझ सा प्रतीत होने लगता है। उन्हें लगता है मानो वह सिर्फ धन उत्पादन के साधन मात्र है। नरेंद्र, अमर और लड़की बसंती को गजाधर बाबू की रोक–टोक अच्छी नहीं लगती, इसीलिए बड़ा लड़का अमर अलग गृहस्थी बसाने की बात करता है। इस स्थिति का आकलन गजाधर बाबू के मनोभाव के द्वारा समझ सकते हैं–"किसी भी बात पर हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक उदासीनता में बदल गयी।"[1] गजाधर बाबू कहानी के अंत में फिर से राजीवमल सेठ की चीनी मिल में नौकरी करने के लिए विवश हो जाते हैं। गजाधर बाबू को धक्का तब लगता है जब पत्नी भी साथ चलने से मना कर देती है–"परसों जाना है तुम भी चलोगी? मैं? पत्नी ने सकपकाकर कहा–मैं चलूंगी तो यहां क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी फिर सयानी लड़की।"[2] इस प्रकार वापसी कहानी अवकाश प्राप्त वृद्ध गजाधर बाबू की व्यथा एवं त्रासदी को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

आधुनिक कथा लेखिका मनु भंडारी रचित 'अकेली' कहानी भी वृद्ध विमर्श को अंकित करती है। कहानी की सोमा बुआ परित्यक्ता है जो घर में अकेली रहती है। वह एक ऐसी विधवा है जो पति के रहते हुए भी विधवा– सा जीवन व्यतीत कर रही है। उनके पति पुत्र वियोग में सन्यासी बनकर हरिद्वार चले गए हैं। साल में 1 महीने के लिए ही घर आते हैं। उनका स्वभाव कठोर है। वह बात–बात पर सोमा बुआ को टोकते रहते हैं। सोमा बुआ पिछले 20 साल से घर में अकेली रहती है। वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए पास–पड़ोस के यहां प्रसंगों में आती –जाती रहती है। बुआ की विडंबना यह है कि उनको अपना जीवन

पड़ोसवालों के भरोसे ही काटना पड़ता है। वर्तमान समय में भी कई वृद्ध को सोमा बुआ की तरह अकेले रहने के लिए विवश होना पड़ता है। हमारे तथाकथित कई सभ्य समाज में यह स्थिति देखने को मिलती है। इतना ही नहीं संतानों के होने के बावजूद भी उसे अकेले रहने के लिए या वृद्धाश्रम में रहने के लिए छोड़ दिया जाता है। यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि वृद्धों को असहाय एवं अकेले छोड़ दिया जाता है। सोमा बुआ का स्वभाव मिलनसार एवं सरल है। वह बिना बुलाए भी सगे–संबंधी तथा पास–पड़ोस में शादी तथा मुंडन जैसे अवसर पर चली जाती है, लेकिन उनके पति सन्यासी महाराज को यह सब पसंद नहीं है। सोमा बुआ की इस स्थिति को हम इन शब्दों के माध्यम से जान सकते हैं – "सुनने को तो सुनती हूं, पर मन तो दुखता ही है कि एक महीने को आते हैं तो कभी भी मीठे बोल नहीं बोलते, मेरा आना–जाना इन्हें सुहाता नहीं, तो तू ही बता राधा... मैं अकेली पडी–पडी यहां मैं इनके नाम को रोया करूं उस पर से कहीं आऊं जाऊं, वह भी इनसे बर्दाश्त नहीं होता...और बुआ फूट फूट कर रो पडी।"[3] जब दूर के समधी के यहां किसी का ब्याह होनेवाला है, यह समाचार सुनकर वह प्रसन्न हो जाती है। विधवा ननंद तो यहां तक कह देती है कि वह अपनी आंखों से बुलावे की आमंत्रित सूची में उनका नाम देखकर आयी है। कई बार समाज के सदस्यों के द्वारा वृद्धों का मजाक भी किया जाता है। शाम हो जाने के बावजूद भी बुआ को आमंत्रण नहीं मिला, तब वह व्यथित एवं दुखी हो जाती है। वह अपने बुझे हुए ह्रदय से रसोई बनाने लगती है। आलोच्य कहानी में दिखाया गया है कि वृद्धावस्था में पति–पत्नी दोनों में से किसी एक के अभाव में व्यक्ति की मानसिकता ही बदल जाती है। सोमा बुआ को अकेलापन खा जाता है। दूसरा आज शादी–ब्याह जैसे प्रसंगों में वृद्धों की आवश्यकता एवं अनिवार्यता पर भी सोमा बुआ के चरित्र के द्वारा कहानीकार ने व्यंग्य किया है। अतः अकेली कहानी में मनु भंडारी ने आधुनिक परिवेश में व्यक्तिवादिता और उपयोगितावादिता को प्रस्तुत किया है। वस्तुतः आज संबंधों में सहानुभूति का स्थान औपचारिकता ने ले लिया है।

आधुनिक हिंदी कथाकार भीष्म साहनीजी ने भी वृद्धों की यथार्थ व वास्तविक स्थिति का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। 'चीफ की दावत' कहानी में साहनीजी ने वृद्ध मां की विवशता का सोचनीय एवं कारुणिक दृश्य खींचा है। इस कहानी में पुत्र शामनाथ अपनी मां को अपनी तरक्की का साधन बनाने से भी हिचकिचाता नहीं है। बेटे की तरक्की के लिए मां चीफ के सामने लोकगीत गाकर उसे खुश करती है। आंखों से कम दिखाई देने के बावजूद, फुलकारी बनाने का वचन देती है। मां आखिर मां होती है, बेटे की तरक्की के लिए वह खुद को भी समर्पित तथा न्योछावर करने के लिए सदैव तत्पर व तैयार रहती है। लेकिन संतान बड़े होकर माता–पिता के बुढ़ापे की लाठी न बनकर उसे बोझ समझने लगते हैं। शामनाथ के घर में मां के लिए कोई जगह नहीं है। इतना ही नहीं चीफ के घर आने से पहले वह अपनी मां को पड़ोसवालों के घर में थोड़े समय के लिए भेजने की योजना भी बनाते हैं। क्योंकि उनके घर आज चीफ को भोजन के लिए आमंत्रित किया गया था। शामनाथ अपनी मां को चीफ के सामने आने नहीं देना चाहता था। अंत में सब तैयारियां मुकम्मल होने के बाद उसके मन में एक अड़चन खड़ी हुई–"मां का क्या होगा? श्रीमती काम करते–करते ठहर गई और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोली इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो, रात भर बेशक वही रहे। कल आ जाए।[4] इससे ज्यादा मां के लिए विडम्बना तथा दुख की बात कौन सी हो सकती है? शामनाथ द्वारा बात–बात में मां का अपमान किया जाता है। मां के पास चूड़िया एवं जेवर नहीं है, क्योंकि शामनाथ की पढ़ाई में खर्च कर दिए थे। बेटा तुम तो जानते हो, सब जेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए। यह वाक्य शामनाथ को तीर की तरह लगा, तिनक कर बोले– यह कौन सा राग छेड़ दिया मां! सीधा कह दो नहीं है जेवर, बस।..... जो जेवर बिका, तो

कुछ बनकर ही आया हूं, निरा लंडूरा तो नही लौट आया। जितना दिया था, उससे दुगना ले लेना।"[5] यहाँ पर शामनाथ आधुनिक दिखने की चाह में प्रदर्शन प्रिय हो गया है और बुड्ढी मां चीफ की दावत के समय प्रदर्शन योग्य वस्तु नहीं बल्कि कूड़े की तरह छिपाने की वस्तु मात्र बन गयी है। कहानी में पारिवारिक जीवन मूल्यों के विघटन को दिखाया गया है। अतः कह सकते हैं कि भीष्म साहनी की कालजयी कहानी चीफ की दावत हिंदी कथा साहित्य में व्यक्त वृद्ध विमर्श के सभी आयामों को अपने भीतर समेटती है। अपनी मां के प्रति शामनाथ का जो वस्तुवादी दृष्टिकोण है, वह हमारे वर्तमान समाज की धृणित सोच या विचारधारा को बयां करता है। वर्तमान समय में कई शामनाथ अपने वृद्ध मां–बाप को जीवन की संध्याबेला में तड़पने के लिए, मरने के लिए विवश कर देते हैं। नई पीढ़ी की अत्याधुनिक सोच ने मनुष्य को पूरी तरह से स्वार्थी तथा संवेदनहीन बना दिया है।

'पिता' नामक कहानी में ज्ञानरंजनजी ने नई पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष की कथा को बड़े ही हृदयस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है। पिता अपने पुत्र से तारतम्य स्थापित नहीं कर पा रहा है। दूसरी तरफ पुत्र भी अपने पिता की विचारधारा को समझने में समर्थ नहीं हो पा रहा है। पिता कहानी के मुख्य पात्र पिता पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। बहुत स्वाभिमानी एवं आत्मनिर्भर है। पिता और पुत्र की पीढ़ी में विचार और व्यवहार का अंतर होने के बावजूद भी भावनात्मक संबंध दिखाई देता है। पुत्र का युवा – मानस अपनी प्रतिष्ठा के लिए लड़ रहा है, जबकि पिता अपने संस्कारों को छोड़ना नहीं चाहते । अतः वर्तमान युवा मानस एवं बुजुर्ग के बीच, वैचारिक अंतराल को बड़े ही यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। पुत्र चाहता है कि पिता सभी सुविधाओं को भोगे लेकिन पिता को भौतिक सुविधाओं से परहेज है। हालांकि पिता अपने पुत्र को आधुनिक सुविधाओं का भोग करने से रोकते नहीं। उन्हें यह सब कुछ खुद के लिए करना पसंद नहीं है। अतः वह उसे कहते हैं–आप लोग जाइए न भाई, काफी हाउस में बैठिए, झूठी वैनिटी के लिए बेयरा को टीप दीजिए, रहमान के यहां डेढ़ रूपये वाला बाल कटाइए, मुझे क्यों घुसीटते हो।"[6] कई बार पुत्र को पिता की मानसिकता पर गुस्सा भी आता है। इतना ही नहीं, पुत्र को कई बार अपने पिता ढोंगी लगते हैं। पुत्र सोचता है–"पिता तुम हमारा निषेध करते हो। तुम ढोंगी हो, अहंकारी ब्रज अहंकारी।"[7] इस प्रकार 'पिता' कहानी में भी यथोचित वृद्ध विमर्श का यथार्थ व सटीक चित्रण किया गया है।

वस्तुतः वृद्ध विमर्श वर्तमान समाज की जटिलता एवं नग्न यथार्थ को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। वर्तमान पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी की विचारधारा में तारतम्यता बिठाना एक विकट समस्या बन गयी है। मोटे तौर पर आज की पीढ़ी अपने कर्तव्यबोध से मुंह फेरने लगी है। बढ़े–बुजुर्गों का स्थान घर में औपचारिक होता जा रहा है। आज का आधुनिक मनुष्य संबंधों की अहमियत को भूलता जा रहा है और अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए संबंधों की वेदी चढा रहा है। पिता, वापसी, चीफ की दावत जैसी कहानियाँ वर्तमान समाज की पोल खोलने में समर्थ है तथा वर्तमान समय में प्रासंगिक भी।

- Dr. Sanjay L. Bandhiya
Government Arts College Bhesan
Near of bus stand, Government Arts College Bhesan
Dist-Junagadh-362020 (Gujrat)

संदर्भ :

1) कथा कुसुम (वापसी) – सं. भरत पटेल पृ. 166–167
(2) कथा कुसुम (वापसी) – सं.भरत पटेल पृ. 168
(3) कथा कुसुम (अकेली) – सं. भरत पटेल पृ. 186
(4) कथा कुसुम (अकेली) – सं. भरत पटेल पृ.116
(5) कथासेतु (चीफ की दावत) – सं. डॉ.उमाशंकर तिवारी, श्रीमती माधुरी सिंह पृ. 118
(6) सपना नही (पिता) ज्ञानरंजन पृ.162
(7) सपना नही (पिता) ज्ञानरंजन पृ. 164

''सुमन'' के काव्य में निहित सामाजिक जीवन-दृष्टि

–डॉ प्रांजल कुमार नाथ

शोध–सार – शिवमंगल सिंह 'सुमन' अपने समय के सामूहिक चेतना के संरक्षक माने जाते है। उन्होंने अपने काव्य में समाज के विभिन्न पहलुओं को स्थान दिया। पीड़ितों और शोषितों की दीनहीन स्थिति, किसान एवं श्रमिकों की असहायपन, गरीबी, नारी की दयनीय अवस्था आदि का यथार्थ चित्रण सुमन के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सुमन की नजर समाज की सभी विसंगतियों पर थी। देश को स्वत्रंत्रता मिलने से पूर्व गांधीजी ने देश की राजनीति में जिन मूल्यों को प्रतिष्ठित किया था वह स्वतंत्रता के बाद धीरे–धीरे लुप्त होने लगे और इसके विपरीत राजनीति में स्वार्थ, अवसरवाद, भ्रष्टाचार, सत्तामोह आदि विसंगतियाँ पनपने लगी। इसी का परिणाम, समाज में व्याप्त विभिन्न अन्याय–अत्याचार आदि का प्रतिफलन है। ऐसे समय में कवि 'सुमन' ने राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति आदि सभी विसंगतियों पर न सिर्फ व्यंग बरसाए अपितु अपनी कविताओं के माध्यम से उन विसंगतियों को दूर करने के हरसंभव प्रयास किये। दूसरी ओर राजनीति और समाज के एक संतुलित रूपों से ही एक अच्छे समाज की कल्पना की जा सकती है। कवि 'सुमन' ने यह समझाया कि व्यक्ति के जीवन में समाज की कितनी आवश्यकता है, कितना महत्व है।

बीज शब्द : समाज, विसंगति, सहानुभूति, मानवतावादी, परोपकार, विवशता, पीड़ित।

मानव–समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई परिवार है तथा परिवार का हर एक सदस्य समाज का अंग होता है। व्यक्ति अपनी सामूहिकता तथा सहानुभूति प्रवृत्ति के कारण वह दूसरे व्यक्ति के साथ, परिवार के साथ, राज्य के साथ, देश अथवा दूसरे देशों के लोगों के साथ मिल जुल कर रहना पसंद करते है। उनके इस व्यवहारों के प्रति निर्मित दृष्टिकोण ही सामाजिक मूल्यों का निर्धारण करती है। लोगों के उन सामाजिक प्रमूल्य ही समाज को अर्थ और महत्त्व प्रदान करता है । समाज की शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए भी दया, करुणा, परोपकार, मानवता आदि का होना जरुरी है। 'सुमन' के काव्य में चित्रित सामाजिक दृष्टि, करुणा और सहानुभूति आदि उनकी संवेदनाओं का एक महत्वपूर्ण प्रकाश है। उनके हृदय में समाज के पीड़ित, प्रतारित, दुखीजन और गरीबों के प्रति अपार करुणा और स्नेह है। जिसका प्रतिफलन उनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है। गरीबी नामक जिस बीमारी से समाज मर रहा था। उस स्थिति की असहायता, लोगों की तड़प आदि को कवि ने जिस तरह से वर्णन किया है, वह बहुत ही दुखद हैं–

और नहीं वह भी मिलता है
मानव चीख चीख चिल्लाता
हाय नहीं यह देखा जाता।[1]

गरीबी व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक दोनों तरफ से अपाहिज बना देती हैं। असमर्थता इस कदर बढ़ जाती है कि माँ अपनी बेटे को दूध तक पिलाने में भी असमर्थता महसूस करती है। ऐसी विवशता का चित्रण कवि सुमन के कविता में ने निम्न प्रकार से व्यक्त हुआ हैं–

कैसे सहती होगी माँ की
छाती यह सब हाय
देख कलेजे के टुकड़ों को
टूक–टूक निरुपाय।[2]

इस भयानक असमर्थता को जानकर या सुनकर लोगों का दिल तार–तार हो जाता है। माँ बच्चे को बचाना तो दूर; मृत शरीर को कफन से भी ढक नहीं पाती तक नहीं दे पाती। माँ अपने इस असमर्थता से रो पड़ती।

परोपकार, दया, करुणा आदि गुणों को भारतीय दर्शन में, उत्तम गुण माना गया है। मानवतावादी कवि 'सुमन' ने अपनी कविताओं में परोपकार की भावनाओं को बड़ी ही गहराई के साथ वर्णन किया हैं। कवि समाज के सभी लोगों के हित में काम करने के पक्षधर थे, जिसमें त्याग सबसे आवश्यक तत्व है। 'सुमन' मनुष्य जीवन से ही नहीं अपितु प्राकृतिक उपादानों में भी परोपकार की भावना को अपने में लेने की बात करते हुए नदी–निर्झर आदि का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

जग का आतप शीतल करनी
नद निर्झर झरते रहते हैं
मानव की सीमित काया से
नयनों के सोते ढरते हैं
प्राणों का आतप क्षीण न हो, वह आग चाहता है जीवन
तप–त्याग चाहता ही जीवन।[3]

दूसरी ओर, भारतीय जीवन मूल्यों मेंय सौहार्द की भावना को भी अधिक महत्व दिया गया है और इसे श्रेष्ठ मानवीय गुण कहा गया है। सौहार्द की भावना में हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या आदि को त्याग कर सम्पूर्ण मानव जाति को समान रूप से देखने की बातें कही है। 'सुमन' ने अपनी अनेक कविताओं

में सामाजिक सौहार्द की अनिवार्यता को अंकित किया है। सामाजिक स्वस्थता के लिए 'सुमन' पारस्परिक सौहार्द को आवश्यक मानते है।

जीवन जीवन का साथी हो
पीड़ा पीड़ित तक हो परिमित।[4]

संकट के समय में साथी ही हिम्मत बनकर खड़े रहते है। सम्पूर्ण विश्व को सौहार्द की दृष्टि से देखनेवला 'सुमन' समाज की दुर्दशाओं का एक यथार्थतापूर्ण चित्रण निम्न प्रकार से प्रस्तुत करता है–

बीन सड़ा मैला नाली का
मुँह में लेता डाल
भूख ? भूख ने मिटा दिया है
भले बुरे का ख्याल।[5]

सचेत तथा जागरूक कवि 'सुमन' की नजर देश के विभिन्न पहलु पर था और उसपर उन्होंने अपना मत भी व्यक्त किया। स्वाधीनता के बाद, देश में आर्थिक रूप से जिस दयनीय स्थिति का उत्पन्न हो गया था उसपर भी सुमन ने कलम चलायी है। कवि इस परिस्थिति का मूल कारण गलत आर्थिक नीति तथा भ्रष्ट नेताओं को मानते हुए उसे धिक्कारते है और जिसका फल साधारण जनता किस तरह भोग रही थी, उसका भी उन्होंने चित्रण किया है। सन् 1974 में महंगाई आसमान को छूने लगी थी, तब पूँजीवादी लोग और ठेकेदार गोदामों में माल भरकर ऊँचे दाम में बेच रहे थे। दूसरी ओर गरीब लोग अपने तथा अपने परिवार का पोषण न कर पाने के कारण आत्महत्या जैसे घिनोने काम करने को मजबूर हो रहे थे। देश की इस विपन्न स्थिति का चित्रण कवि सुमन ने 'वाह री वाग्मिता' नामक कविता में अत्यंत मार्मिकता से व्यक्त करते हुए कहा हैं–

मरना अलग बात है
पर आत्महत्या तो
संभव हो सकती नहीं
दारुण संकल्प बिना,
नहिं दरिद्र सम
दुःख जग माहीं।[6]

प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में जनता ही जनार्दन है। जनता अपने मूल्यवान मतदान से सरकार का गठन करती है ताकि, भविष्य में सरकार उनका सहारा बने अथवा सरकार उनके लिए योजना बनाए। लेकिन, वही सरकार जब गरीबों का सहारा न बनकर केवल पूँजीपतियों की कटपुतली बनकर रह जाती है तब देश की स्थिति अशांतिकर हो जाती है और जनता का भी सरकार से भरोसा खत्म होने लगता है। बंगाल के अकाल के समय सरकार की इसी भूमिका को देखकर कवि 'सुमन' ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। राजनैतिक नेताओं की सत्ता के प्रति लोलुपता उनके दलबदल स्थिति, अनैतिकता, हिंसा, स्वार्थपरता और घोटाले का 'सुमन' ने खुलकर चित्रण किया है–

बन गये हो स्वयं अपनी विकृति के उपहास
लीलता हर किरण–कन को स्वार्थ का खग्रास
शील, संयम, आचरण, चरने गए हैं घास।

स्पष्ट है कि कवि सुमन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमताओं से, सामाजिक स्थितियों से अत्यंत दुखी थे। वह समाज से इन विषमताओं को दूर कर वर्ग रहित सामूहिक चेतना से समृद्ध एक नवीन समाज की कल्पना करते थे।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कवि 'सुमन' का जीवन–दृष्टि मानवतावादी और एक अच्छे समाज की कल्पना को समर्थन करनेवाला है। उनके काव्य में निहित सामाजिक जीवन–दृष्टि पर ध्यान देने से मालूम पड़ता हैं कि 'सुमन' के काव्य में करुणा, दया, परोपकार तथा सौहार्द आदि की भावनाओं को मूलतः प्रधानता मिली हैं। समाज में शोषितों और पीड़ितों के प्रति करुणा, दया तथा परोपकार की भावनाओं से ही सच्छे मानवतावाद को प्रतिष्ठित किया जा सकता है। असल में समाज द्वारा ही व्यक्ति और व्यक्ति से ही समाज परिचालित होता है। सुमन का काव्य इस भावनाओं को मूल में रखकर, लोगों को अपने जीवन मूल्यों से परिचय कराती है।

– डॉ प्रांजल कुमार नाथ
सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग,
कृष्णकांत हेन्दिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

संदर्भ :

1. 'सुमन' शिवमंगल सिंह : सुमन समग्र, खंड एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली–110002, पृ. 128.
2. 'सुमन' शिवमंगल सिंह : सुमन समग्र, खंड एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली– 110002, पृ. 207.
3. 'सुमन' शिवमंगल सिंह : सुमन समग्र, खंड एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली– 110002, पृ. 146.
4. 'सुमन' शिवमंगल सिंह : सुमन समग्र, खंड एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली– 110002, पृ. 176.
5. 'सुमन' शिवमंगल सिंह : सुमन समग्र, खंड एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली – 110002, पृ. 210.
6. 'सुमन' शिवमंगल सिंह : सुमन समग्र, खंड एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली– 110002, पृ. 235.
7. 'सुमन' शिवमंगल सिंह : सुमन समग्र, खंड एक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली– 110002, पृ. 239.

।। अपराजिता हूँ ।।

इक्कीसवीं सदी की नारी हूँ,
अबला नहीं सबला हूँ।
वर्षो तक युद्धरत रही हूँ,
अपने अधिकारों हेतु।

सुनो ! मनुवादियों,
ओ ! समाज के ठेकेदारों,
बदल दिये हैं वो मूल्य सारे
सीता की अग्नि-परीक्षा वाले।

अब न सहूँगी अत्याचार,
अन्याय, शोषण और उत्पीड़न।
अब मैं हूँ शिक्षित-संगठित,
और अपना दीपक आप।

अपनी शक्ति पहचान चुकी हूँ,
मैं अपराजिता हूँ।

डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठीनगर,
उज्जैन 456010 (म.प्र.)
मो. 9424892775

दलितों, वंचितों एवं शोषितों की प्रखर आवाज, जनप्रिय बहुजन नेता

कांशीराम जी

की जयंती पर विनम्र श्रद्धांजलि

वंचित वर्ग के उत्थान में आपका योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2024-2026 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

_____

_____

_____

_____

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार